The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 2 | Issue 3 | March 2024
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

महाजनपद युग तथा बौद्ध धर्मानुयायी राजवंशों के राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था का विश्लेषण

डॉ0 शक्ति प्रसाद तिवारी

ईमेल — shaktihz@gmail-com

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Keywords :
पैमाइश, बहुजन, पाश्चात्य, सन्निकट, विनिश्चयामात्य

ABSTRACT

बौद्ध धर्म के अनुसार 'अंगुत्तर निकाय' और जैनधर्म के 'भगवतीसूत्र' में महाजनपदों के नाम की सूची में संख्या तो सोलह ही है किन्तु नामों में भिन्नता है । बौद्ध धर्म अनुयायी राजवंशों में हर्यकवंश, मौर्यवंश, कुषाणवंश एवं पुष्यभूतिवंश इत्यादि वंशों ने अपने राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित किया। राज्य की व्यवस्था को चलाने के लिए प्राचीन काल से ही किसी न किसी एक पद्धति से शासन सूत्र चलता रहा है। राजतंत्र में राजा प्रमादी होकर निरंकुश भी हो सकता है। प्रजा लाभान्वित हो और वह जीवन को सुखमय ढंग से व्यतीत कर सके इस उद्देश्य को व्यवहार रूप में लेकर चलाने वाले शासक का प्रजा सदा सम्मान करती रही है । यही कारण था कि प्रजा उनके विरूद्ध विद्रोह की आवाज ही न उठाती थी। जब तक इन दोनों का ऐसा सौम्य सम्बन्ध बना रहा तब तक प्रजा में असन्तोष और विद्रोह की भावनायें कभी भी जाग्रत नहीं हुईं। प्रजा जनतंत्र एवं प्रजातंत्र में इतना विषम अन्तर कभी भी अनुभव नहीं करती थी। बौद्ध काल के राजतंत्रीय राज्यों में राजा प्रायः वंशक्रमानुगत होते थे। शासन करने की योग्यता के अतिरिक्त कुछ अन्य बातें भी राजा के लिए ध्यान में रखी जाती थीं। अन्धे और विकलांग व्यक्ति को राजा नहीं बनाया जाता था। राजतन्त्रात्मक राज्यों में राजा का बड़ा लड़का ही गद्दी पर बैठता था, इसलिए राजा

लोग संतान के लिए बहुत उत्सुक रहते। यदि राजा के कोई सन्तान न हो तो राजगद्दी राजा के भाई को प्राप्त हो सकती थी।

प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था में राजंतत्र का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस तंत्र के द्वारा प्रजावर्ग के दुःखों का अन्त हुआ है और समाज सुख की सांस लेता रहा है। राजतंत्र में यद्यपि राजा प्रमुख होता है और शासन शक्ति उसी के हाथ में होती है। प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था में राजतंत्र होने पर भी राजा पर मंत्रिमण्डल का पूर्ण नियंत्रण रहता था। मंत्रिमण्डल में स्वयं ही योग्य, त्यागी, अनुभवी और राज्य एवं प्रजा के हितचिन्तक लोगों का चयन किया जाता था। राजा प्रजा को अपनी सन्तान के समान समझता था। राजा प्रजा के सुख–दुःख को अपना सुख–दुःख समझता था।[1]

राजतंत्र में राजा को निरंकुश न होने देने के लिये उसके साथ अच्छा मंत्रिमण्डल सभी प्राचीन राजतंत्रों में साथ रहा है। राजा के अधिकार एवं कर्त्तव्यों का इसमें विशेष ध्यान रखा जाता था। एक सन्तुलित राज्य व्यवस्था से राजतंत्र चलाया जाता था। राज्य के कल्याण के पश्चात् ही राजा का कल्याण एवं समृद्धि होती थी। पाश्चात्य शासकों के स्वेच्छाचारिता वाले भारतीय राजतंत्र से पूर्ण रूप से मुक्त था।

वेदों में सभा और समिति का वर्णन मिलता है। राजा की सहायता के लिये एक समिति भी होती थी, जो राजा को उचित परामर्श देकर निरंकुशता से दूर रखती थी। राजा के हाथ में सत्ता होती थी, राजा–तंत्र अर्थात् शासन को संचालित करता था अतः राजतंत्र नाम से इसे सम्बोधित किया जाता था।

ऐतरेय ब्राह्मण में राज्य के अनेक नामों से प्रयुक्त किया गया है। राज्य, वैराज्य, स्वाराज्य, भोज्य और साम्राज्य। इन राज्यों के शासकों का नाम भी इन नामों से पुकारा जाता था, राजा, विराट्, स्वराट् भोज एवं सम्राट्।[2]

"मैंने अपनी शक्ति के अनुसार अब तक नदियों के नाम बताये इसके पश्चात् अब मैं भारतवर्ष के जनपदों का वर्णन करता हूँ।"[3] प्राचीन महाकाव्य महाभारत के अध्ययन करने पर भी 157 जनपदों की विशिष्ट नामावली में 1. कुरू पांचाल 2. शाल्ब 3. मान्द्रेय 4. शूरसेन 5. पुलिन्द 6. बोध, 7. माल 8. मत्स्य 9. कुशल्य 10.सौशलय इत्यादि का भी वर्णन मिलता है।[4]

पूर्व वर्णित जनपदों के अतिरिक्त महाभारत के भीष्मपर्व एवं जम्बूखण्ड में कुछ अन्य 62. जनपदों 1. द्रविड़ 2. केरल 3. प्राच्य 4. भूषिक 5. वनवासिक 6. कर्णाटक इत्यादि का भी वर्णन मिलता है।[5]

राजतंत्र प्रायः वंशानुगत होता था, यद्यपि चुनाव का भी निर्देश यत्र–तत्र मिलता है। सम्भव है कि यह औपचारिकता–मात्र के रूप में रह गया हो। एक यूनानी लेखक का कहना है कि पंजाब के किसी भाग में सबसे सुन्दर व्यक्ति ही जनपद के लिए चुना जाता था। जहाँ कहीं चुनाव था भी वहाँ अब यह राज परिवार तक ही सीमित रह गया था। किन्तु कुछ अवसरों पर चुनाव राज परिवार से बाहर भी होता था। राजपद केवल क्षत्रियों का एकाधिकार नहीं था यह भी देखा जाता है कि इस युग में एक प्रमुख एवं शक्तिशाली राजवंश शुद्रों का भी था। प्रादेशिक शासक बहुधा राजवंश के राजकुमार ही होते थे। ज्यों–ज्यों केन्द्रीकरण बढ़ता गया त्यों–त्यों प्रान्तों पर केन्द्र का प्रभाव भी बढ़ा। प्रान्तीय शासनों में जो नियुक्तियाँ होती थीं, वे अब क्षत्रियों तक ही सीमित नहीं थीं। केन्द्रीकरण के फलस्वरूप शासन का उत्तरदायित्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता गया और अब अकेले शासन करना राजा के लिए असम्भव हो गया। यही कारण है कि इस युग में बहुत सारे नये कर्मचारियों के पदों का विकास हुआ।

'महामात्र' पद का विकास इस युग में हुआ, ऐसा माना जाता है कि महामात्र का महत्व भी शासन के संदर्भ में बढ़ा। कुछ सामान्य सवार्धिक कार्यों की देखभाल करने वाले (सवर्थिक) थे। दूसरे न्यायकर्ता (व्यावहारिक) थे। तीसरे सेना का निरीक्षण करने वाले (सेनानायक) थे। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे महामात्र थे, जो भूमि सम्बन्धी माप करने वाले (रज्जुग्राहक) या उपज में राजा के हिस्से की माप करने वाले (द्रोणमापक) होते थे। राजा अब भी न्याय विभाग का सर्वश्रेष्ठ अधिकारी था, परन्तु

इस युग में इस कार्य का सम्पादन मुख्य रूप से व्यवहारिक ही करते थे। बौद्ध–साहित्य से ज्ञात होता है कि बहुत से विशेषाधिकार प्राप्त न्यायालय थे। विनिश्चय महामात्र की कचहरी से राजन् की कचहरी तक एक अपर दूसरी कचहरी होती थी। प्रेणित–पुस्तक (दण्डविधान) के अनुसार न्याय सुनाया जाता था और दण्ड–विधि में दैवी न्याय का प्रचलन था।

बौद्ध काल के राजतंत्रीय राज्यों में राजा प्रायः वंशक्रमानुगत होते थे। शासन करने की योग्यता के अतिरिक्त कुछ अन्य बातें भी राजा के लिए ध्यान में रखी जाती थीं। अन्धे और विकलांग व्यक्ति को राजा नहीं बनाया जाता था। राजतन्त्रात्मक राज्यों में राजा का बड़ा लड़का ही गद्दी पर बैठता था, इसलिए राजा लोग संतान के लिए बहुत उत्सुक रहते। यदि राजा के कोई सन्तान न हो तो राजगद्दी राजा के भाई को प्राप्त हो सकती थी।[6] अनेक बार राजमाता को भी राजगद्दी प्राप्त सकती थी।[7] कुछ दशाओं में राजा की विधवा रानी अमात्य वर्ग की सहायता से राज्य का संचालन करती थी। यदि राजकुमार शासन चलाने के अयोग्य हो तो अमात्य लोग उसे पदच्यूत कर किसी अन्य व्यक्ति को राजगद्दी पर आसीन कर सकते थे। बौद्ध साहित्य में राजा के दस धर्मो का उल्लेख किया गया है–दान, शील, परित्याग, आर्जव, मार्दव तप, अक्रोध, अपिंहिंसा, शान्ति और अवरोधन।[8]

शासन में राजा के अतिरिक्त अमात्यों का महत्वपूर्ण स्थान होता था। वे राजा के शासन–सम्बन्धी विषयों पर परामर्श देने का कार्य करते थे। अमात्यों के लिए सब विद्याओं एवं शिल्पों में निष्णात होना आवश्यक माना जाता था।[9] राजा की अनुपस्थिति या शासन–कार्य में असमर्थता की दशा में भी वे शासन–सूत्र को अपने हाथों में कर लेते थे।[10] मंत्रिपरिषद् का बड़ा महत्व होता था। अमात्यों में सबसे प्रधान स्थान पुरोहित का होता था, क्योंकि वह राजा के धर्म और अर्थ दोनों का अनुशासक होता था। बौद्ध अनुभूति के अनुसार प्रथम राजा को भी जिसे 'महासम्मत' कहा गया है, पुरोहित नियुक्त करने की आवश्यकता हुई थी।[11] पुरोहित का पद प्रायः वंशानुक्रमानुगत होता था। पुरोहित के अतिरिक्त भी अन्य अनेक अमात्यों के नाम जातक–साहित्य में उपलब्ध होते हैं। इनमें सेनापति भाण्डागारिक, विनिश्चयामात्य और रज्जुक के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सेनापति

का कार्य सैन्य संचालन था, परन्तु वह एक मंत्री के रूप में कार्य करता था। कहीं–कहीं उसे अमात्यों का प्रमुख कहा गया है।[12]

विनिश्चयामात्य कानून सम्बन्धी मामलों में राजा को परामर्श देते थे और मुकदमों का निर्णय भी करते थे।[13] विनिश्चयामात्य न्याय मंत्री को कहते थे। भाण्डागारिक कोषाध्यक्ष को कहते थे। रज्जुक भूमि की पैमाइश तथा मालगुजारी वसूल करने वाले को कहते थे। इनके अतिरिक्त द्रोणमापक, हरिण्यक, सारथी, दोवारिक आदि राजकर्मचारियों का उल्लेख भी जातक साहित्य में मिलता है। शहर के कोतवाल की 'नगरगुतिक' कहते थे।

देश की रक्षा का भार राजा पर था और राजा इस कार्य का सम्पादन अपने सेनापति की सहायता से करता था। राजा को अपने राज्य की रक्षा के लिए बहुत बड़ी सेना पदाति, अश्वारोही, रथ और हाथी रखनी पड़ती थी । बाद के महाकाव्यों ने इनमें नौसेना, मजदूरों, गुप्तचरों और स्थानीक पथ–प्रदर्शकों को सम्मिलित कर दिया है। यूनानियों द्वारा भारतीय शस्त्रास्त्र के सम्बन्ध में भी कुछ वर्णन प्राप्त होते है। लम्ब धनुष और बेंत से बने नोकवाले तीर, तलवार के साथ–साथ शतध्नी नामक एक अस्त्र का व्यवहार भी होता था। जैने लेखकों के अनुसार अजातशत्रु ने लिच्छवियों के विरूद्ध नेरणमसल और महाशिलाकण्टक का व्यवहार किया। यूनानी लेखक इस बात के साक्षी है कि भारतीय युद्ध–कला में सबसे बढ़े–चढ़े थे।

राज की आय का प्रमुख साधन 'कर' था। अतः कर–संग्रह राज्य के लिए बड़ा महत्वपूर्ण काम था। कभी–कभी कोष भरने के विचित्र उपायों का अवलम्बन लिया जाता था। बलि और शुल्क के अतिरिक्त इस काल में हमें 'भागदुय' और 'षड़भाग' का उल्लेख भी मिलता है। कर–सम्बन्धी कर्मचारियों में प्रधान ग्राममोजक था। अन्य राजकीय करों में चुंगी, 'दुग्धधन' और बेगारी का उल्लेख तत्कालीन बौद्ध–साहित्य में उपलब्ध है।

हर्यकवंशकालीन मगध का सबसे पहला शक्तिशाली राजा बिम्बिसार था। पालि ग्रन्थों के अनुसार वह हर्यक कुल का था। वह एक साधारण सामन्त भट्टिय का पुत्र था और उसका विरुद्ध

'श्रेणिक' अथवा 'श्रेणिक' था। महावंश के अनुसार प्रारम्भ में उसकी राजधानी गिरिब्रज में थी, परन्तु बाद में उसने राजगृह में ही अपनी राजधानी बनाया। बिम्बिसार के शासन का प्रशंसात्मक वर्णन हमें पाली साहित्य में उपलब्ध होता है। बिम्बिसार ने साम्राज्य की स्थापना के साथ ही मगध में संगठित एवं सुदृढ़ शासन की भी नींव डाली। तत्कालीन राज्य की स्थितियों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि बिम्बिसार का राज्य–प्रबंध सुसंगठित एवं सुसंचालित था। राजा के सहायता के लिए उपराजा, माण्डलिक राजा, सेनापति, सेनानायक महामात्र, ग्रामभोजक आदि प्रमुख पदाधिकारी होते थे। सम्भवतः बिम्बिसार अपने बड़े पुत्र दर्शक की सहायता से शासन करता था और इसलिये उसे उपराजा कहा गया है। माण्डलिक राजाज्ञा से शासन करते थे। सेनापति का पद बड़ा ही महत्वपूर्ण था। उससे नीचे के पदाधिकारी को 'सेनापति महामात्र' कहा जाता था। न्यायाधीश को 'व्यवहारिक महामात्र' कहते थे। राजा स्वयं सर्वोच्च शासक था। मगध का शासन–प्रबंध महामात्रों के हाथ में था और उनके ऊपर कड़ी दृष्टि रखी जाती थी। कुणिक चंपा में रहकर अंग का शासन करता था।[14]

बिम्बिसार के राज्य में कुछ गणराज्य भी थे, जिनका शासन राजकुमारों के हाथ में था। बिम्बिसार का शासन बहुत कठिन था। दण्ड–विधान में किसी प्रकार की दया का स्थान न था। कारावास के अतिरिक्त मृत्युदंड देने की भी व्यवस्था थी। जो अधिकारी उसे अच्छा परामर्श देते, उन्हें वह पुरस्कार देता था और जो ठीक परामर्श न देते उन्हें पदच्युत कर देता था। उसके समय में चिकित्सा का भी उचित प्रबंध था। जीवक बिम्बिसार का राजवैद्य था। महागोविन्द नामक (राजगृह का निर्माणकर्त्ता) प्रसिद्ध वास्तुकार उसी के समय में हुआ था।

मगध साम्राज्य के उत्कर्ष के बाद केन्द्रीय शासन के वास्तविक स्वरूप का पता हमें अच्छी तरह लगता है। मगध में साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् एक ऐसी शासन पद्धति का विकास हुआ जो एक विशाल साम्राज्य के लिए उपयुक्त थी। मगध साम्राज्य के शासन में राजा ही 'कुटस्थानीय' होता था।[15] राजा की रक्षा करने के उपायों को कौटिल्य ने बड़े विस्तार से वर्णन किया है।

मौर्यकाल में केन्द्रीय शासन पूर्णरूपेण विकसित और संघटित हो चुका था। मौर्यो का केन्द्रीय शासन कई विभागों में बँटा हुआ था। विविध विभागों के बड़े अधिकारी लेखक कहे जाते थे। कौटिल्य का कथन है कि 'लेखक' का पद 'अमात्य' के समकक्ष होता था। उसका पद और वेतन केवल मंत्रियों से ही नीचा होता था। राजा के लिए वार्ताशास्त्र और दण्डनीति में परंगत होना अनिवार्य था। वह मंत्रियों की राय से शासन करता था। मंत्रिमण्डल की बैठक में भाग लेना, अधिकारियों से मुलाकात करना, गुप्तचरों के प्रतिवेदन पर विचार करना, सैनिक परेड का निरीक्षण करना, मुख्य–न्यायाधीश की हैसियत से अपील सुनना इत्यादि उसके प्रमुख काम थे। राजा के लिए उत्साह–शक्ति आवश्यक मानी जाती थी। अशोक ने अपने छठे शिलालेख में कहा है– "मुझे शायद ही पूर्ण सन्तोष होता कि मैंने जितना आवश्यक था उतना राज्य–कार्य किया।" राजा मंत्रियों से सलाह लेता था किन्तु मंत्रिपरिषद् का निर्णय उसके लिए मान्य नहीं था। वह प्राण दण्ड की सजा रोक सकता था, और नया आदेश निकाल सकता था। उसका शासन उदार एवं निरंकुश था प्रजा के कल्याणार्थ वह सतत प्रयत्नशील रहता था।

अर्थशास्त्र में कहा गया है कि वह (राजा) अपना सुख प्रजा के सुख में और अपना हित प्रजा के हित में समझता था।[16] अशोक प्रजा को अपनी सन्तान मानता था तथा उसके कल्याण के लिए प्रयत्न करता था। मौर्य साम्राज्य का राज–दरबार भव्य था।

केन्द्रीय शासन को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए विभिन्न विभागों को विभिन्न अध्यक्षों के अधीन रखा जाता था। मंत्रिमण्डल केन्द्रीय शासन का प्रमुख अंग था और इसके अतिरिक्त राजा को सलाह देने के लिए एक छोटी समिति थी, जिसमें युवराज, मुख्य मंत्री, सेनापति, वित्त मंत्री और पुरोहित रहते थे। विविध मंत्रियों का कार्य–क्षेत्र भी अलग–अलग था। कौटिल्य ने लिखा है कि जैसे एक पहिये से रथ नहीं चल सकता उसी प्रकार बिना मंत्रियों के परामर्श के शासन ठीक प्रकार नहीं चल सकता।[17] मंत्रिमण्डल राज्य के लिए नीति निर्धारित करता था और जब विदेशी राजदूत दरबार में आते थे तब मंत्रिमण्डल के सदस्य वहाँ उपस्थित रहते थे। परन्तु विशेष परिस्थितियों में राजा बहुमत के विरूद्ध भी कार्य कर सकता था।[18] मंत्रिपरिषद् की बैठक में यदि कोई मंत्री उपस्थित नहीं हुआ तो

वह लिखकर ही अपनी राय भेजता था। राजा मौखिक आदेश भी देता था। केन्दीय शासन के आदेशों को ठीक–ठीक लेखबद्ध करने की योग्यता पर शासन की उत्तमता निर्भर करती थी।

केन्द्र के शासन–संचालन हेतु अनेक विभाग थे, जिनको कौटिल्य ने 'तीर्थ' के नाम से सम्बोधित किया है। इनकी संख्या अठारह होती थी।[19] और प्रत्येक 'तीर्थ' महामात्य (महामात्र) के अधीन था। इन अठारह तीर्थें का विवरण इस प्रकार हैः– 1. मंत्री तथा पुरोहित, 2. समाहर्त्ता, 3. सन्निधाता, 4. सेनापति, 5. युवराज, 6. प्रवेष्टा, 7. नायक, 8. व्यावहारिक, 9. कर्मान्तिक, 10. मंत्रिपरिषद् अध्यक्ष, 11. दण्डपाल, 12. अंतपाल, 13. दुर्गपाल, 14. नागरक, 15. प्रशास्ता, 16. दौवारिक, 17. आंतवैशिक, 18. आटविक।

इसके अतिरिक्त शासन संचालन के लिए कुल छः विभाग थे– सेना–विभाग, राजस्व विभाग, कोष विभाग, वाणिज्य विभाग, न्याय विभाग, आदि।

मौर्य साम्राज्य की स्थापना से भारत में एक ऐसी शासन–पद्धति का विकास हुआ, जो एक विशाल साम्राज्य के लिए उपयुक्त थी। यद्यपि सम्पूर्ण मार्य साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी, पर वहाँ कम्बोज, बंग और दक्षिण तक विस्तृत साम्राज्य का शासन सुचारू रूप से नहीं किया जा सकता था। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि साम्राज्य के अनेक प्रान्त हों। अर्थशास्त्र में प्रान्तों के नामों का उल्लेख नहीं है, परन्तु अशोक के लेखों से यह ज्ञात होता है कि शासन की दृष्टि से मौर्य साम्राज्य पाँच भागों में विभक्त था,[20] जिनकी राजधानियाँ क्रमशः पाटलिपुत्र, तोसाली, उज्जयिनी, तक्षशिला और सुवर्णगिरि थीं।

मौर्य साम्राज्य पाँच चक्रों में विभक्त था। ये चक्र, प्रान्त या सूबे निम्नलिखित थे–

1. उत्तरापथ– इसमें कम्पोज, गांधार, कश्मीर, अफगानिस्तान, पंजाब आदि के प्रदेश थे। इसकी राजधानी तक्षशिला थी।

2. पश्चिमी चक्र– इसमें काठियावाड़–गुजरात से लगाकर राजपूताना–मालवा आदि के सब प्रदेश शामिल थे। इसकी राजधानी उज्जयिनी थी।

3. दक्षिणापथ– विन्ध्याचल के दक्षिण का सारा प्रदेश इस चक्र में था और इसकी राजधानी सुवर्णगिरि थी।

4. कलिंग– इसकी राजधानी तोसाली थी।

5. भध्यदेश– इसमें वर्त्तमान बिहार, उत्तरप्रदेश और बंगाल सम्मिलित थे और इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी।

इन प्रान्तों के शासन के लिए प्रायः राजकुल के व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता था, जिन्हें कुमार कहा जाता था। कुमार अनेक महामात्रों की सहायता से अपने–अपने प्रान्तों का शासन संचालित करते थे।

इन पाँचों प्रान्तों (चक्रों) के अन्तर्गत अनेक छोटे–छोटे शासन केन्द्र या मण्डल भी होते थे, जिनमें कुमार के अधीन महामात्य शासन थे। तोसाली के अधीन समापा, पाटलीपुत्र के अधीन कोशाम्बी और सुवर्णगिरि के अधीन इसिला में महामात्य रहते थे।

प्रान्तीय कुमारों को सलाह देने के लिए एक प्रान्तीय मंत्रिमण्डल रहता था। सम्राट सदैव इस बात का ध्यान रखते थे कि प्रान्तीय शासक सशक्त न हो सकें, इसलिए उन पर निगाह रखी जाती थी। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि महापात्रों का ही मंत्रिमण्डल रहता था और प्रान्तीय शासक इसी मंत्रिमंडल की सहायता से राज्य संचालन करते थे।

जिस प्रकार केन्द्र प्रान्तों में विभाजित था, उसी प्रकार प्रान्त भी अनेक मण्डलों में विभक्त था, जिसमें कुमार के अधीन महामात्य शासन करते थे। उदाहरण के लिए तोसाली के अधीन समाथा में, पाटलिपुत्र के अधीन कौशाम्बी में और सुवर्णगिरि के अधीन इसिला में महामात्य शासन करते थे। उज्जयिनी के अधीन सुराष्ट्र एक पृथक 'देश' था, जिसका शासन चन्द्रगुप्त के समय वैश्य पुष्यगुप्त के अधीन था। महामात्यों को शासन–सम्बन्धी बहुत सारे अधिकार प्राप्त थे।

शासन की सुविधा के लिए मौर्यकाल में प्रान्तों के और भी उप–विभाग किये गये थे। अर्थशास्त्र में ये इस प्रकार दिये गये हैं– 1. जनपद, 2. स्थानीय (इसमें 800 गाँव शामिल थे), 3. द्रोणमुख (इसमें

400 गाँव शामिल थे), 4. खावेटिक (इसमें 200 गाँव शामिल थे), 5. संग्रहण (इसमें 10 गाँव शामिल थे), 6. ग्राम।

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् कुषाणों ने उत्तरी भारत के एक विशाल भू–भाग को दो से अधिक शताब्दियों तक राजनीतिक स्थायित्व प्रदान करने में सफलता प्राप्त की। कुषाण शासन का प्रमुख राजा हुआ करता था। वह बड़े–बड़े पद धारण किया करता था। कुषाण राजाओं ने 'महाराजा' तथा 'राजातिराज'[21] कुषाणों का वह राज्य नहीं, बल्कि एक साम्राज्य था जिसकी सीमाएँ पश्चिम में ईरान तक और पूर्व में मगध तक फैली हुई थीं। इतने बड़े साम्राज्य का शासन कुषाण सम्राट् अपने क्षत्रपों या महाक्षत्रपों की सहायता से चलाते थे। केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा जिला आदि का शासन–तंत्र पहले ही जैसा था। इस सम्बन्ध में अलतेकर के कथन का सारांश इस प्रकार है– 'उच्चाधिकारियों को महामात्र व रज्जुक ही कहते थे। अमात्यों में से ही उच्च पद के अधिकारियों की नियुक्ति होती थी।'

कुषाणकालीन शासन की प्रमुख इकाइयाँ आहार, जनपद, देश या विषय और राष्ट्र थे। कनिष्क के शासन–काल में बनारस, मथुरा और उज्जयिनी प्रमुख प्राप्त थे और इन स्थानों में महाक्षत्रप रहा करते थे। महाक्षत्रप के अधीन क्षत्रप हुआ करते थे। महाक्षत्रप कुषाण काल में प्रान्तीय शासक का पद था। मालवा के शुंग शासक अग्निमित्र का अपना मंत्रिमण्डल था। अपने मन से ये लोग संधि–विग्रह भी किया करते थे, जैसा कि अग्निमित्र ने विदर्भ राज्य से किया था। इसका कारण यह था कि उस समय यातायात अथवा आवागमन की इतनी सुविधा नहीं थी और प्रान्तीय शासक बहुत हद तक अपने क्षेत्र में स्वतंत्र ही रहा करते थे। प्रान्त में सेना भी रखी जाती थी ताकि राजद्रोह अथवा विद्रोह दबाया जा सके। यौधेयों के विद्रोह के दमन के लिए कुषाणों ने अपने दक्षिण के महाक्षत्रप रूद्रदमन को भेजा था। सिथियन लोग प्रान्तीय शासन को क्षत्रप कहते थे। क्षत्रपों के ऊपर महाक्षत्रप होते थे। महामात्र एवं राजुक की प्रणाली भी इस युग में बनी रही। शुंगों के राज्य में मध्य भारत में और चुटु सातकर्णियों के राज्य में कर्णाटक में राजुक नाम अधिकारी थे। अमात्यों में से ही उच्च पद के अधिकारियों की नियुक्ति होती थी। महाक्षत्रप नदपाणका मंत्री अयम और रूद्रदमन का सौराष्ट्र का

प्रान्ताधिपति कुलेप दोनों ही अमात्य थे। इस युग में कहीं–कहीं प्रान्त को देश और राष्ट्र भी कहा जाता है। राष्ट्र के शासक को राष्ट्रपति या राष्ट्रिक कहा गया है। यह कभी–कभी अमात्यों में से भी चुना जाता था। क्षत्रपों के राज्य में सौराष्ट्र का प्रान्ताधिप कुलेप था और मालवा का प्रांताधिप श्रीधर महादण्डनायक। कुषाण राज्य में दक्षिण के प्रांत का शासक सेनापति नदपाण और चष्टन थे।

कुषाण युग में जिला–शासन के सम्बन्ध में कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता है, परन्तु अनुमान किया जा सकता है कि जिले का शासन क्षत्रपों द्वारा सम्पन्न होता था। जिले का निर्देशन आहार, जनपद तथा विषय से होता था। कुषाण सम्राटों के कुछ अधिकारियों के नाम विदेशी थे। सैनिक राज्यपाल के लिए स्ट्रेटेथस और जिला मजिस्ट्रेट के लिए मेरीडक शब्द प्रयुक्त होता था। कुछ अधिकारियों के नाम भारतीय थे, जैसे– 'अमात्य' और 'महासेनापति'। कनिष्क के सारनाथ वाले लेख से ज्ञात होता है कि वह अपने इस विशाल साम्राज्य का शासन क्षत्रप–शासन–व्यवस्था द्वारा करता था। उसके साम्राज्य का पूर्वी भाग महाक्षत्रप खरपल्लान तथा क्षत्रप वनस्पर द्वारा शासित होता था। खरपल्लान उसका महाक्षत्रप था जो सम्भवतः मथुरा में था और वनस्पर वाराणसी का क्षत्रप था। साम्राज्य के उत्तरी भागों में हम सेनानायक दल और वेरायसी तथा लियाक नामक क्षत्रपों के नाम सुनते हैं।

कुषाण शासन–प्रणाली में क्षत्रप अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता था। क्षत्रपों को कहीं–कहीं 'ग्रामस्वामी' नाम से भी पुकारा गया है। सम्भव है, इस रूप में क्षत्रप ग्रामिक तथा राजा के बीच शासन में मध्यस्थ का कार्य किया करता हो। क्षत्रों का कार्य आहार, जनपद तथा विषय में शान्ति तथा सुव्यवस्था कायम करना तथा राजस्व की वसूली करना था। वैयक्तिक रूप से क्षत्रप लोग धार्मिक कार्यो में भी भाग लेते थे। क्षत्रप वनस्पर, खरपल्लन तथा वेशयासी ने बुद्ध की प्रतिमाएँ स्थापित की थीं और चैत्यों का भी निर्माण किया था। क्षत्रप की सहायता के लिए दण्डनायक हुआ करते थे। ये सैनिक पदाधिकारी कभी–कभी असैनिक कार्य भी किया करते थे। कनिष्क के समय में उसके क्षत्रप ने दान कार्य में भाग लिया था।

आहार एवं विषय के अन्तर्गत ग्राम का शासन सम्पन्न होता था। इस समय शासन–प्रणाली का सबसे छोटा विभाग ग्राम था। ग्राम का प्रमुख ग्रामिक होता था। क्षत्रप की ही तरह ग्रामिक का पद वंशानुगत था। प्रत्येक ग्रामिक की भूमि दान में मिला करती थी और उसी की आय उसका वेतन था। ग्रामिक के ऊपर गाँव के अमन–चैन तथा शान्ति का उत्तरदायित्व था। राजकीय राजस्व की वसूली वही किया करता था।

कुषाणकालीन प्रशासानिक व्यवस्था बाद में भारतीय शासन प्रणाली को प्रभावित करती रहीं। कुषाण राज्त्व देवी सिद्धान्त से प्रभावित था।

गुप्तकालीन साम्राज्य में शासन–पद्धति का केन्द्र सम्राट् था, जो 'एकराट्' के रूप में वह स्वयं करता था। गुप्त शासक अपने को 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर', 'परम भागवत', 'परमदेवत', 'सम्राट्', 'चक्रवर्ती', 'परमभट्टारक' आदि विरूद से विभूषित करते थे। समुद्रगुप्त को एक शिलालेख में लोक–धाम्नोदेवस्य कहा गया है। इस लेख के अनुसार वह लोकानुष्ठान और लोकपालन के लिए ही मनुष्य रूप था, वरन् वह संसार में रहने वाला देतवा ही था। देवी भावना का विकास भी इस युग हो रहा था और इसका प्रमाण 'याज्ञवल्क्यस्मृति' तथा नारद स्मृति में मिलता है। गुप्तकाल में यह सिद्धान्त सर्वमान्य हो गया था।

गुप्त काल में सम्राट् को शासन–कार्य में सहायता देने के लिए मंत्री या सचिव होते थे, जिनकी कोई संख्या निश्चित नहीं थी। नारदस्मृति में राज्य की एक सभा का उल्लेख हुआ है, जिसके सभासद् धर्मशास्त्र में कुशल, अर्थज्ञान में प्रवीण, कुलीन, सत्यवादी और शत्रु एवं मित्र को एक दृष्टि से देखने वाले होने चाहिए। राजा अपनी इस राजसभा में मंत्रियों के साथ परामर्श करता था। देश का कानून इस काल में भी परम्परागत धर्म, चरित्र और व्यवहार पर आश्रित थे। महाराजाधिराज की पदवी कुषाणों की राजाधिराज पदवी से सम्बद्ध थी। अधार्मिक और प्रजापीड़क राजाओं की निन्दा इस युग के शिलालेखों में की गयी है।

सम्राट् के बाद सबसे ऊँचा स्थान युवराज का होता था। गुप्तकालीन शासन–प्रणाली में शासनाधिकार का नियम उत्तराधिकार के ऊपर आधारित होता था, किन्तु बहुधा सम्राट् अपने उत्तराधिकारी का अपने ही जीवन–काल में निर्वाचन कर लेता था। ज्येष्ठ पुत्र को युवराज कहा जाता था। युवराज का पद बड़े ही महत्व का था। अपने पिता की सम्मति से वह प्रांतवालों को आदेश भी भेजता था। राजा की वृद्धावस्था में युवराज को ही शासन–संचालन का दायित्व वहन करना पड़ता था, जैसे स्कन्दगुप्त को प्रथम कुमारगुप्त के राज्यकाल के अन्त में करना पड़ा।

गुप्त काल में शासन विषयक, सेना विषयक तथा न्याय विषयक सभी अधिकार राजा में केन्द्रित थे। उसकी सहायता के लिए एक मंत्रिमण्डल था, किन्तु अंतिम निर्णय राजा लेता था। महत्वपूर्ण युद्धों में राजा स्वयं सेनापतित्व भी करता था। महत्वपूर्ण स्थानों पर उच्च–पदाधिकारियों की नियुक्ति सम्राट् के प्रति उत्तरदायी होते थे। सम्राट् स्वयं केन्दीय शासनालय की देखभाल करता था और प्रांतीय गवर्नरों को आदेश भेजता था। राजा विदेश नीति का निर्धारण भी करता था। वह अपने साम्राज्य का सबसे बड़ा न्यायाधीश था। उससे ऊपर किसी मुकदमें की सुनवाई नहीं हो सकती थी। गुप्तकाल की स्मृतियाँ और अभिलेख राजा को प्रजाहित एवं प्रजा शासन के निमित सदैव प्रयत्नशील रहने के लिए उपदेश देते है।[22] राजा प्रायः इस उपदेश का पालन करते थे। स्थानीय संस्थाओं को भी शासन के बहुत सारे अधिकार दे दिये जाते थे। चीनी यात्री फाहियान से इस बात का प्रमाण मिलता है कि गुप्त–युग में लोग सुखी और सम्पन्न थे व सरकारी जुल्म के विषय में प्रायः उनकी शिकायतें नहीं रहती थी।[23]

विशाल गुप्त साम्राज्य भी कई प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्त को राष्ट्र देश अथवा मण्डल भी कहते थे। गुप्तकालीन शिलालेखों के आधार पर सुराष्ट्र, मालवा, मन्दसोर, कौशाम्बी, अन्तर्वेदी (यमुना और गंगा के बीच का प्रदेश) आदि प्रान्तों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त काशी, कोशल, मगध, वंग, पंचाल आदि दूसरे प्रान्त भी गुप्त–साम्राज्य में रहे होंगे। सौराष्ट्र का राष्ट्रिक (राष्ट्र का शासक) समुन्द्रगुप्त के समय में पर्णदत्त था। मन्दसोर का शासन बन्धुवर्मा के हाथ में था। प्रान्तीय

शासक के रूप में राजकुल के लोग ही नियुक्त किये जाते थे। इन्हें 'युवराजकुमारामात्य' कहते थे। इनके अपने–अपने महासेनापति, महादण्डनायक आदि प्रधान कर्मचारी भी होते थे।

प्रत्येक राष्ट्र भुक्तियों में विभक्त होता था और भुक्तियाँ विषयों में विभक्त होती थीं। भुक्ति को हम आजकल की कमिश्नरी के समान समझ सकते है। गुप्तकालीन शिलालेखों में तीरमुक्ति, पुण्ड्रवर्धनमुक्ति और मगधमुक्ति आदि का उल्लेख मिलता है। 'विषय' वर्तमान समय के जिले के समान थे। युवराज कुमारामात्यों के अधीन मुक्तियों का शासन करने के लिए उपरिक नियुक्त किये जाते थे। उपरिकों की नियुक्ति सीधे सम्राट् द्वारा होती थी और साधारणतः इस पद भी राजकुल के लोग ही नियुक्त किये जाते थे। विषय के शासक को 'विषयपति' कहते थे। इसकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा की जाती थी। भुक्ति के शासक को उपरिक के अतिरिक्त भोगिक, भोगपति और गोप्ता भी कहते थे। दामोदर गुप्त के समय में पुण्ड्रवर्धनमुक्ति का शासक उपरिकर महाराज राजपुत्र देवपुत्र देवमट्टारक था, जिससे यह सिद्ध होता है कि वह 'राजकुल' का था। इससे पूर्व इस पद पर चिरादत्त नाम व्यक्ति था, जो राजकुल का नहीं था।

गुप्त–युग में जिला के लिए विषय शब्द का प्रयोग किया गया है। जिला को कभी–कभी आहार भी कहा जाता था। विषय का शासक विषयपति कहलाता था। इसकी नियुक्ति प्रांतपाल करता था। इनका शासन में बहुत महत्व था। विषयपति प्रायः वही कार्य विषयों में करता था, जो कि उपरिक भुक्तियों में करते थे।

प्रान्तों के अतिरिक्त जिले (विषय) और उनसे छोटे भी शासन के क्षेत्र थे। गुप्तयुग में भोग , बीथी, मण्डल , पेठक, पार्श्व, ग्राम, पत और अग्रहार सम्भवतः विषय के प्रशासनिक अंग रहे होंगे। विषय का अध्यक्ष विषयपति सीधे प्रांतीय शासक के प्रति उत्तरदायी था और तन्नियुक्तक कहलाता था। उनका प्रधान कार्यालय 'अधिष्ठान' में होता था, जहाँ अधिकरण रहता था। विषयपति को परामर्श देने के लिए एक सभा होती थी, जिसमें विषय के बड़े लोग (विषयमहतर) सभासद् के रूप में रहते थे। इसके सदस्यों की संख्या तीस के लगभग होती थी विषयपति की शासन–सम्बन्धी कार्यो में

सहायता देने के लिए अनेक कर्मचारी थे, जिनके नाम इस प्रकार है– 1. नगरश्रेष्ठी, 2. सार्थवाह, 3 प्रथमकुलिक, 4. प्रथमकायस्थ, 5. पुस्तपाल।

विषय के इन शासनाधिकारियों के कार्यकाल की अवधि भी कम–से–कम पाँच वर्ष अवश्य रही होगी। पुस्तपाल को छोड़कर अन्य चार अधिकारियों के द्वारा एक मंत्रिमण्डल का निर्माण होता था जिसका अध्यक्ष विषयपति ही होता था। शासन के कार्यो में विषयपति अपने मंत्रिमण्डल के सदस्यों से परामर्श लिया करता था। इस मंत्रिमण्डल के अस्तित्व से यह सिद्ध हो जाता है कि नगर–शासन में लोकमत का भी कुछ हाथ रहता था। इसके अतिरिक्त विषय के मुख्य लोग महत्तर के रूप में रहते थे। विषयपति अपने प्रदेश के मुख्य–मुख्य व्यक्तियों को इस काम के लिए नियुक्त कर लेता था। जिला–परिषद् की इस व्यवस्था को हम गुप्तकाल की देन मान सकते हैं।

गुप्त साम्राज्य के पतनोपरान्त भारतीय राजनीति में जो अस्थिरता आ गयी थी, हर्ष ने उसे दूर कर एक उचित शासन–व्यवस्था की स्थापना की। लेकिन उसकी शासन–व्यवस्था की आधारशिला गुप्त शासन–व्यवस्था थी, जिसमें समयानुसार परिवर्तन तथा परिवर्द्धन किया। राजा की सहायता के लिए मंत्रिमण्डल की व्यवस्था थी। मंत्रिमण्डल के प्रस्ताव से ही वह राजा बना था। मंत्रिमण्डल का अधिकार व्यापक था। केन्द्रीय शासन का कार्यालय राजधानी में रहता था। शासन–विषयक आदेशों का मुख्याधिकारी महाक्षपटलाधिकृत होता था।

राजकीय कार्यों में सहायता देने के लिए मंत्रियों की नियुक्ति की जाती थी जिन्हें अमात्य या सचिव कहा जाता था। मंत्रिपरिषद् में सम्भवतः निम्नलिखित अधिकारी हुआ करते थे–संधिविग्रहिक, अक्षपटलाधिकृत तथा सेनापति। मंत्रिपरिषद् का राजा के निर्वाचन में हाथ होता था और इसका स्वयं प्रमाण स्वयं हर्ष ही है। परिषद् विदेश नीति भी निर्धारित करती थी।

हर्ष के पदाधिकारियों की सूची दानपत्रों पर प्राप्त होती है। जो इस प्रकार है– दोस्साधसाधनिक, प्रमातार, राजस्थानीय, कुमारामात्य, उपरिक तथा विषयपति।

उपरिक प्रांतों अथवा मुक्तियों के शासक थे।[24] कुमारामात्यगण साम्राज्य के उच्च श्रेणी के कर्मचारी थे। कुमारामात्य का पद, साधारण राजकुमार युवराज अथवा कभी–कभी सम्राट् के समान होता था।[25] राजस्थानिय का उल्लेख वलमी के दान–पत्रों में भी मिलता है, इस शब्द का समानार्थक शब्द 'वायसराय' हो सकता है, यह महाक्षत्रप रूद्रदामन के जूनागढ़ के लेख में उल्लिखित 'राष्ट्रीय'शब्द का अनुरूप है। विषयपति जिला पदाधिकारी होते थे। दान पत्रों में दूतक नामक पदाधिकारी का उल्लेख मिलता है। लेखक नामक पदाधिकारी का भी इन दान पत्रों में उल्लेख किया गया है। इसे कहीं–कहीं दीवर कहा गया है। अनेक दीवरों के ऊपर एक दीविरपति होता था।

हर्ष काल में केन्द्र प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्त मुक्तियों में विभक्त था और मुक्ति विषयों में। मुक्ति के अन्तर्गत अनेक प्रदेश अथवा विषय होते थे। विषय के मुख्य अधिकारी को, जो विषयपति कहलाते थे, प्रान्तीय नियुक्त करते थे। अतः उन्हें :तन्नियुक्ताः' कहा गया है। कभी–कभी वे सीधे सम्राट् के द्वारा भी नियुक्त किये जाते थे।[26] विषय के अनेक पाथक होते थे। पाथक ग्राम में बँटा था।

प्रान्तीय शासकों तथा विषय के शासकों की सहायता के लिए दांडिक, चोरोद्धरणिक, दण्डपाशिक आदि पुलिस के कर्मचारियों की भी व्यवस्था की गयी थी। दामोदरपुर के ताम्र–लेखों में पाँच विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों का उल्लेख मिलता है। इनमें से चार इस प्रकार है– 1. नगर–श्रेष्ठी, 2. सार्थवाह, 3. प्रथम कुलिक, 4. प्रथम कायस्थ।

हर्ष के बाद इसको चलाने वाला कोई नहीं रहा, अतः उसी के साथ यह समाप्त भी हो गया।

निष्कर्ष– मगध साम्राज्य का उत्कर्ष ई0 पू0 में प्रारम्भ हुआ था और उसकी परिणति मौर्य साम्राज्य में जाकर हुई। मगध में साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् एक ऐसी शासन पद्धति का विकास हुआ जो एक विशाल साम्राज्य के लिए उपयुक्त थी साम्राज्य पाँच चक्रों में विभक्त प्रान्तीय कुमारों के अधीन था जो सम्बंधित पदाधिकारियों के सहायता से प्रान्तों का शासन संचालित करते थे। गुप्त साम्राज्य के पतनोपरान्त जो अस्थिरता आ गयी थी, हर्ष ने उसे दूर कर एक उचित शासन–व्यवस्था की स्थापना की। हर्ष के शासन पर गुप्त शासन की छाप तो स्पष्ट है, परन्तु हर्ष ने इसे नये सिरे से संगठित

किया था। हर्ष के बाद इसको चलाने वाला कोई नहीं रहा, अतः उसी के साथ यह समाप्त भी हो गया। उपरोक्त वंशों में राजा के अतिरिक्त मंत्रीपरिषद होती थी जो राजा को सलाह देता था बौद्ध धर्म अनुयायी राजवंशों का प्रजा के हितों में विशेष ध्यान रखा जाता था जो अन्य धर्म अनुयायी राजवंशों में काम मिलता है ।

सन्दर्भ सूचि –

1. प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचारक, डॉ0 अत्युतानन्द घिल्डियाल
2. ऐतरेय ब्राह्मण 8–10
3. महाभारत–भीष्मपर्व 9 अध्याय 38 श्लोक
4. महाभारत भीष्मपर्व 9 अध्याय 39,40,41 श्लोक
5. महाभारत, जम्बूखण्ड 9, 58, 65
6. Cowell, The Jataka, Vol.II, pp.251-260
7. Ibid, Vol.II,p224
8. 'दानं सीलं परिच्चागं अज्जवं मद्दवं तपम्। अवकोर्ध अविहिंसा च खान्ति च अविरोधनम्।।' Fousball : The Jataka, Vol.III, p.274
9. Cowell : The Jataka Vol. II, p.51
10. Ibid, Vol.IV, p.223
11. Ibid, Vol.IV, p.223
12. Ibid, Vol.IV, p.92
13. Ibid, Vol.IV, p.259
14. भगवती सूत्र 300–यम्पायां कुणिको राजा बभूव
15. कौटिल्य अर्थशास्त्र 8–1
16. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 1.9
17. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 1.3
18. वही, 1.15

19. वही 1.8

20. Dr. Hemchandra Ray Choudhary, Political History of Ancient India, 6th Edn.,p 288

21. B.N.Puri- India under Kushanas. Whitehead-Catalogue of the coin in the Punjab Museum-Vol. I, pp.178 ff. CII-II, p.70 ff- 'महाराजा राजातिराज देवपुत्रे'

22. प्रजासंरजनरियालनोंद्योगसंततसमदीक्षितस्य।—हं0व0 5.31. ए. इं. 7. 235

23. लेग्गे—ए रेकर्ड ऑफ बुद्धिस्ट किंग्डस्, अध्याय 16, स्कंदगुप्त का जूनागढ़—शिलालेख (का0इ0इं0 3.58)श्लोक 6,21,3

24. एपिग्राफिका इन्डिका, जिल्द 1;पृ0345 और जिल्द 15, पृ0113

25. राखालदास बनर्जी, दि एज आफ दि इंपीरियल गुप्ताज, पृ0 72

26. (बसाक, हिस्ट्री ऑफ नार्थ ईस्टर्न इन्डिया, पृ0 309